International Journal of
Global Multidisciplinary Research and Analytics
IJGMRA | ISSN (Online): 3107-6483
July-September 2025 | Vol. 01 | Issue 2
Website: www.thearyapublication.com

# दलित-चेतना की अवधारणा और निराला का साहित्य

**डॉ. कृष्ण कुमार पाल***

*असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, का. सु. साकेत स्नातकोत्तर महाविद्यालय, अयोध्या (उ.प्र.), भारत
ई-मेल: kpal1190@gmail.com
DOI: **https://doi.org/10.5281/zenodo.17314025**
Accepted on: 20/08/2025 Published on: 10/10/2025

**सारांश:**

*महात्मा गाँधी द्वारा समाज के जिस वर्ग के लिए हरिजन शब्द का प्रयोग किया गया था उसका मतलब ऐसी जातियों से है, जिनको जातीय पदानुक्रम में निम्नतम स्थान और अस्पृश्य सामाजिक प्रस्थिति पर रखा गया है। इनके लिए 'दलित वर्ग' शब्द का प्रयोग भी प्रचलित है जिसका सर्वप्रथम प्रयोग डॉ० अम्बेडकर ने किया था और इस शब्द का अभिप्राय लोगों के ऐसे वर्गों एवं श्रेणियों से है जो गरीब, शोषित, पीड़ित एवं वंचित तथा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक रूप से पदच्युत थे। किन्तु, पहली बार औपनिवेशिक शासन और आजाद भारत में इस स्वर ने एक समग्र रूप से संश्लेषित समाज की पुनर्रचना के लिए बाध्य कर दिया क्योंकि, अंग्रेजी शासनकाल ने दलित-चेतना को मजबूती प्रदान की। अनेक प्रकार के व्यावसायिक एवं शिल्प गुणों में निपुण ये श्रमजीवी जातियाँ कुम्हार, लुहार, बढ़ई, दर्जी, कहार, पनिहार, पनवाड़ी और मूर्तिकार,चर्मकार ही वह 'दलित समुदाय' है जो खेतों की जुताई, बुआई, कटाई, निराई के काम के साथ वतन का वास्तविक निर्माण करता था। साहित्य की दुनिया में प्रमुख स्थान रखने वाले महाप्राण निराला जन्म से सवर्ण होते हुए भी दलितों के सर्वांगीण विकास के प्रबल समर्थक थे। वे मानव के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षिक उन्नति के माध्यम से विकास के प्रबल समर्थक थे। दलितों के प्रति केवल सहानुभूति दिखाना एक बात है और उनकी उन्नति के लिए सोचना और काम करना दूसरी बात है। निराला ने न केवल दलितवर्ग की विविध समस्याओं पर मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार किया बल्कि समाधान भी प्रस्तुत किया है। समाज में जब तक असमानता रहेंगी तब तक निराला साहित्य की प्रासंगिकता बनी रहेगी।*

***मुख्य शब्द:*** *निराला का दलित-बोध, साहित्य में सामाजिक-न्याय की विचारधारा।*

भारतीय सामाजिक-व्यवस्था में 'जाति' सामाजिक स्तरीकरण का अनिवार्य अंग है जिसमें सर्वोच्च स्थान पर ब्राह्मण पदस्थ है फिर क्षत्रिय फिर वैश्य और सबसे निचले पायदान पर शूद्र आते हैं। 'अनुसूचित जाति' शब्द लोगों के उन समूहों को इंगित करते हैं जो जाति-व्यवस्था से बाहर थे। इनमें मुख्य रूप से साफ-सफाई, दाहकर्म, चमड़ा उतारने जैसे कलुषित कार्य करने वाले अछूत लोग शामिल थे। उच्च जातियों द्वारा इन्हें अपवित्र एवं अस्पृश्य माना जाता था। इनके 'श्याम वर्ण' और अस्वच्छ काम-धंधों के कारण भी उन्हें जाति एवं वर्ग-व्यवस्था के सामाजिक पदानुक्रम में सबसे नीचे रखा गया था। चूँकि वर्णाश्रम सिद्धांत का यह मत है कि- जाति को अपना परम्परागत व्यवसाय ही अपनाना चाहिए। जैसे पुजारी का बेटा पुजारी बने और चर्मकार का बेटा चर्मकार। अस्पृश्य जातियों के लिए अपना व्यवसाय बदलकर अपनी सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार करना असंभव था। 'अनुसूचित जाति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग साइमन कमीशन ने किया और इसे 1935 के भारत सरकार अधिनियम में स्थान प्राप्त हुआ। इस समूह के लिए दूसरा सर्वाधिक प्रयोग होने वाला शब्द 'हरिजन' है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग महात्मा गाँधी द्वारा किया गया जिसका मतलब ऐसी जातियों के एक समुदाय से है जिनको जातिये पदानुक्रम में निम्नतम स्थान और अस्पृश्य सामाजिक प्रस्थिति पर रखा गया है। इनके लिए 'दलित वर्ग' शब्द का प्रयोग भी प्रचलित है जिसका सर्वप्रथम प्रयोग डॉ० अम्बेडकर ने किया था और इस शब्द का अभिप्राय लोगों के ऐसे वर्गों एवं श्रेणियों से है जो गरीब, शोषित, पीड़ित एवं वंचित तथा सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं राजनीतिक रूप से पदच्युत थे। किन्तु, पहली बार औपनिवेशिक शासन और आजाद भारत में इस स्वर ने एक समग्र रूप से संश्लेषित समाज की पुनर्रचना के लिए बाध्य कर दिया क्योंकि, अंग्रेजी शासनकाल ने दलित-चेतना को मजबूती प्रदान की। अनेक प्रकार के व्यावसायिक एवं शिल्प गुणों में निपुण ये श्रमजीवी जातियाँ कुम्हार, लुहार, बढ़ई, दर्जी, कहार, पनिहार, पनवाड़ी और मूर्तिकार,चर्मकार ही वह 'दलित समुदाय' है जो खेतों की जुताई, बुआई, कटाई, निराई के काम के साथ वतन का वास्तविक निर्माण करता था।

समाज ही साहित्य का प्रमुख स्रोत रहा है और साहित्य में इन्हीं 'सामाजिक स्रोतों' की छानबीन होती है। किसी समय विशेष में मानव के सामाजिक-सरोकार रचनात्मकता को प्रभावित करते हैं। इसी क्रम में रचनाकार की संवेदनशीलता एवं ऐतिहासिक चेतना उसके साहित्यिक शिशु को मजबूती प्रदान करते है। आधुनिक युग में राजनीतिक परिवेश का जितना व्यापक प्रभाव साहित्य पर पड़ा है उतना पहले कभी नहीं था । वर्तमान साहित्य केवल प्रेम और सौन्दर्य

की साधना के सहारे नहीं चल सकता है बल्कि वह समाज के सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक, राजनीतिक, धार्मिक परिवेश की संरचनाओं और सांस्कृतियों से प्रभावित होता है।

निराला ने सामाजिक-समरसता की जमीन को निकट से देखने की कोशिश की है। उनकी मानवीय संवेदना समाज के ऐसे लोगों के साथ गहनता से जुड़ी हुई है जिन्हें सामंती ताकतों ने आगे नहीं बढ़ने दिया। दलित समाज के सम्बन्ध में उनका भावुकतापूर्ण, ईमानदारी से भरा परन्तु आवेशपूर्ण कथन दर्शनीय है। "शूद-शक्तियों से यथार्थ भारतीयता की किरणें फूटेंगी। वे ही भविष्य के ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य हैं और ब्राह्मण, क्षत्रिय और दृप्त जातियाँ शूद्र। खुदाई सजा ऐसी ही होती है कि चिरकाल तक लड़कर ब्राह्मण क्षत्रिय पस्त हो गये हैं। उनका कार्य अब वे जातियाँ करेंगी जो अब तक सेवा करती आयीं हैं। भारत तभी तक पराधीन है जब तक वे नहीं जागती। उनका कर्म के क्षेत्र पर उतरना भारत का स्वाधीन होना है"1 निराला ने अपने विचारों को साहित्य की विविध शैलियों के माध्यम से अभिव्यक्त किया है। जिसे दलित-जागरण की अभिव्यक्ति कह सकते हैं । इस तरह से एक नये वर्ग आधारित आन्दोलन की विचारधारात्मक पृष्ठभूमि तैयार होती है। अपनी इस विचारधारा को उन्होंने 'बेला' और 'नये पत्ते' नामक कविता संग्रहों में अभिव्यक्त किया है-

"जल्द जल्द पैर बढ़ाओं, आओ-आओ आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी पाठशाला धोबी, पासी, चमार, तेली खोलेंगे अंधेरे का ताला।।"2

निराला का यह संघर्षमय आह्वान सांस्कृतिक स्तर पर बहुस्तरीय है। एक तरफ वे आर्थिक रूप से पीड़ित लोगों को उनका हक दिलाते हैं तो दूसरी तरफ दलित वर्ग से सांस्कृतिक सूर्योदय की पहल करते हैं। वर्ग और रंग आधरित भेदभाव के विरोध में निराला साहित्य सर्वत्र दिखाई देता है। उनकी दृष्टि में सांस्कृतिक स्वतंत्रता प्राप्ति का मूल संदेश ‘जागरण’ है। इसीलिए 'जागो फिर एक बार' के साथ उन्हें हजारों हाथ एक साथ उठते हुए दिखाई देते हैं। वर्षों से शोषित जनसामान्य की पक्षधरता को वे बड़ी तेजी से ग्रहण करते हैं। वे कहते हैं- “देखता हूँ यहाँ काले-लाल-पीले-श्वेत जन में। शांति की रेखा खिंची है, क्रान्ति कृष्णा हो गई है। क्रान्ति का कृष्णा होना उन्हें स्वीकार नहीं है, इसलिए वे अपने द्विजभाव को त्यागकर खीझवश ‘कान्यकुब्ज-कुल कुलांगार, खाकर पत्तल में करें छेद’ कहते हैं और दलित कवि संत रविदास को इन शब्दों में श्रद्धांजलि देते हैं- "छुआ पारस भी नहीं तुमने, रहे कर्म के अभ्यास में, अविरत बहे ज्ञान-गंगा में समुज्ज्वल चर्मकार, चरण छूकर कर रहा मैं नमस्कार।"3

निराला के साहित्य में दलित-विमर्श की वास्तविक छवि गद्य साहित्य में दिखाई देती है। उनकी प्रमुख गद्य कृतियाँ- कुल्ली भाट, चतुरी चमार, बिल्लेसुर बकरिहा, चोटी की पकड़, चमेली और काले कारनामे प्रमुख हैं जो रचनाकार के स्वतन्त्र एवं सक्रिय स्वरूप से परिचय कराती है। इन कृतियों में सामाजिक-व्यवस्था से वंचित, उपेक्षित और शोषित दलित-वर्ग के पात्रों को प्रमुखता दी गई है। निराला के चिन्तन की विशेषता है वे सामाजिक क्रान्ति की शुरूआत निम्न जातियों की राजनीतिक आन्दोलन की सफलता के रूप में करते हैं। निराला के इन बातों में हमें दलित चेतना के स्वर स्पष्ट सुनाई पड़ते हैं। निराला ने सामंतवादी सामाजिक व्यवस्था में दलितों की दुःखद स्थिति का दस्तावेज प्रस्तुत कर यह दिखाने का प्रयास किया है कि दलित अब शोषण को सहन करने के मूड में नहीं है। उन्होंने अपने अधूरे उपन्यास 'चमेली' में चमेली के माध्यम से दलित चेतना को स्पष्ट किया है। ठाकुर बख्तावर सिंह जब चमेली के साथ जबरदस्ती करने का प्रयास करता है, तो चमेली उसका सख्त प्रतिकार करती है तो ठाकुर द्वारा झूठे बदनाम किये जाने पर पिता जब उसे फटकारते हैं कि तूने मेरी नाक कटवा दी। इस पर वह कहती है- ''अँधेरे में तुझे अपनी नाक न दिख पड़े तो मेरा क्या कसूर है।''4

निराला ने दलित विमर्श की अवधारणा को रचनात्मक कार्य के साथ राजनीतिक कर्तव्य भी माना है। उन्होंने स्वतन्त्रता, समानता एवं बंधुत्व के भाव से निर्मित समाज की कल्पना की। निराला जी स्वयं 'चतुरी चमार' नामक कहानी संग्रह में शिक्षित युवकों के प्रतिनिधि बनकर चतुरी तथा गाँव के निर्धन किसानों का सहयोग करते हैं। चतुरी की लड़ाई उस शोषक जमींदार से है जो किसानों के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार करता है और कुल्लीभाट उपन्यास का नायक 'पथवारीदीन भट्ट' उर्फ कुल्लीभाट जन्म से कुलीन होते हुए भी न सिर्फ मुसलमान स्त्री से ब्याह करता है, बल्कि अछूतों के जीवन-स्तर में सुधार लाने के उद्देश्य से पाठशाला खोलता है और इसके साथ ही अछूत परिवारों के बीमार और लाचार सदस्यों की निःस्वार्थ सेवा भी करता है। इसी तरह 'अलका' उपन्यास में बुधुआ लोध की लड़ाई भी जमींदार से है। अब सवाल यह है कि क्या जमींदारी उन्मूलन से ही दलितों एवं किसानों का स्वत्व वापस आ सकता है। यहाँ सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर दलित अस्मिता का सवाल समग्र रूप में परिलक्षित होता है। निराला साहित्य में परम्परागत व्यवस्था के प्रति विद्रोह और शोषकों के प्रति घृणा का भाव निहित है। निराला ने कुकुरमुत्ता के माध्यम से शोषण व्यवस्था पर व्यंग किया है तो 'वह तोड़ती पत्थर' में यथार्थ का चित्रण किया है। 'काले कारनामें' उपन्यास में सामंत एवं पुरोहित गठजोड़ का अप्रतिम उदाहरण दिखता है। निराला

अपने निजी दुखों को भले ही पूर्णतया प्रकट न कर पाये हों परंतु आम जनमानस के दुखों को पूर्ण संवेदना और यथार्थवादी दृष्टिकोण से प्रकट किया है। यद्यपि वे अपने सम्पूर्ण जीवन काल में अभिशप्त रहे हैं। 'सरोज-स्मृति' में निराला लिखते हैं- "दुःख ही जीवन की कथा रहा। क्या कहूँ आज जो नहीं कही।।"5

निराला ने परम्परागत वर्ण-व्यवस्था को दोषपूर्ण सिद्ध करते हुए दलितों की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक परिस्थितियों के वर्णन में स्वयं सवर्ण होते हुए भी सवर्णों द्वारा उनके प्रति किये जाने वाले शोषण का यथार्थ अंकन किया है। दलितों को अपने अधिकारों के प्रति जागरूक करने की प्रेरणा उनके साहित्य में विद्यमान है। शोषित वर्ग के प्रति निराला का दृष्टिकोण तत्कालीन समाज से अलग और मौलिक है। निराला अपनी रचनाओं में दलितों, शोषितों की दयनीय स्थिति का यथार्थ चित्रण कर उनमें शोषक वर्ग के प्रति विद्रोह का भाव उत्पन्न करते हैं, तत्पश्चात दलितों के उज्ज्वल भविष्य की कामना कर राष्ट्र के निर्माण में उनके योगदान को आवश्यक मानते हैं।

यदि 'दलित' शब्द को जाति से ऊपर उठाकर व्यापक फलक पर देखा जाय तो उसमें सदियों से पद-दलित स्त्रियाँ, निर्धन किसान, शोषित मजदूर और हाशिए का समाज आ जाता है। निराला ने इन सभी वर्गों की दारुण-दशा को अपने लेखन का आधार बनाया है। निराला ने स्वयं लिखा है- 'बाहर मैं कर दिया गया हूँ। और 'ब्राहमण समाज में ज्यों अछूत।' निराला का जन्म तो दलित वर्ग में नहीं हुआ था लेकिन वे अपनी विद्रोही प्रवृत्ति के कारण जिस उच्च वर्ग में जन्मे, उसके नियम एवं सामाजिक बंधनों को कभी स्वीकार नहीं किया जिसके चलते वे अपने ही वर्ग में दलित वर्ग की तरह घृणा, उपेक्षा और उपहास के पात्र रहे हैं। इस प्रकार से कह सकते हैं कि निराला की रचनाओं में दलित-पात्रों का चित्रण केवल सहानुभूतिवश नहीं बल्कि स्वानुभूतिवश है।

निराला अपने समय के सर्वाधिक प्रतिभावान परन्तु विद्रोही प्रवृति के कवि थे वे मानव-मुक्ति के प्रबल समर्थक थे। लेकिन, उन्होंने दलित-वर्ग के लिए कोई आन्दोलन नहीं किया परन्तु अपनी लेखनी के माध्यम से दलितों के हक एवं अधिकार के लिए निरन्तर संघर्षशील रहे हैं। जिस तरह से प्रेमचन्द्र ने अपने साहित्य के माध्यम से तद्युगीन शोषणकारी, सूदखोर और बेगार-प्रथा का विरोध किया था ठीक उसी प्रकार के विरोध का चित्रण निराला के साहित्य में मिलता है- "छक्कन और घसीटे ने शिकायत की, 'पहर भर रात रही, तब बीघे भर की घास छीलकर छोलदारियों की जगह बनायी अब मालिक कहते हैं, लकड़ी चीर दे। दाम कुछ नहीं मिलता।"6

निराला अपने 'निरूपमा' उपन्यास में भारतीय समाज में आदिकाल से प्रचलित वर्ण व्यवस्था के प्रमुख सिद्धान्त, 'जाति आधारित कर्म' के सिद्धान्त की अवहेलना करते हुए पण्डित गिरिजाशंकर मिश्र के पुत्र कृष्णकुमार से जोकि लन्दन से डी. लिट. उपाधि प्राप्त थे, से जूता पालिश करवाकर अपने क्रांतिकारी दृष्टिकोण को प्रदर्शित करते है। "वह बादामी और काली पालिश की दो डिबिया और एक ब्रश लिये बैठा था। कई जोड़े पालिश करने को मिले सबसे एक ही पैसा उसने लिया उसकी भलमनसाहत का प्रमाण था। शहर में सनसनी फैल चली।"7

निराला ने अस्पृश्यता का विरोध करते हुए दलितों को बराबरी का हक देने की वकालत करते हैं। "चतुरी चमार" नामक कहानी में इस बात का चित्रण मिलता है। "गोश्त आने लगा। समय-समय पर लोध, पासी, धोबी और चमारों का ब्रह्मभोज भी चलता रहा। घृतपक्व मसालेदार मांस की खुशबू से जिसकी भी लार टपकी, आप निमंत्रित होने को पूछा। इस तरह मेरा मकान साधारण जनों का अड्डा बल्कि हाउस आफ कामंस हो गया।"8

हरिजनों के प्रति गांधीजी के विचारों से प्रभावित होकर निराला ने उनके समर्थन में लिखा- "यदि हम चाहते हैं कि महात्मा जी जीवित रहें-हमारे लिए हमारे देश के लिए, तो हमें हरिजनों को गले लगाना होगा, उन्हें अपनाना होगा, ऊँच नीच का भेदभाव मिटाना होगा। यदि हम सब अब भी अपने भाइयों को घृणा की दृष्टि से देखेंगे, यदि हम अब भी उनका तिरस्कार करेंगे, यदि हम अब भी अपने ही ऐसे हाड़चाम वाले मनुष्यों को अछूत समझेंगे, उन्हें दुरदुरायेंगे, तो वह समय दूर नहीं, जब संसार की सारी शक्तियां हम से रूठ जायेंगी, तथा हमारा ऐसा पतन होगा कि हम उठाये न उठेंगे। संसार हमारी अवस्था पर हंसेगा। हमारी मूर्खता पर हमारा उपहास करेगा।" 9

निराला वैवाहिक सम्बन्धों को सामाजिक सद्भाव बढ़ाने और छुआछूत को मिटाने की प्रमुख कड़ी के रूप में देखते हैं। उनका मानना है कि यदि दलितों एवं सवर्णों के बीच स्वस्थ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित होने लग जाय तो देश में सामाजिक समरसता बढ़ जायेगी - "खान-पान, विवाहादि सम्बन्ध के लिए घबड़ाने की कोई बात नहीं। विवाह तो वास्तव में शरीर से पहले मन से सम्बन्ध रखता है, पुरूष और प्रकृति का मेल दो मनों के भीतर से होना चाहिए। आजकल ब्राह्मणेत्तर समाज में ऐसे मनुष्यों की कमी नहीं, जो विद्या एवं बुद्धि में ब्राह्मणों के बराबर है। फिर ब्राह्मणों की कन्याओं का उनके साथ और उनकी कुमारियों का ब्राह्मणों के साथ मानसिक मेल तथा विवाह असंगत सा अस्वाभाविक कदापि नहीं और ब्राह्मण तथा क्षत्रियों में ऐसी स्थिति वालों की भी कमी नहीं, जिनसे चमार, धोबी,

नाई और लोध आदि बुद्धि तथा कर्म-कौशल में बढ़े हुए हैं। फिर विवाह की व्यापकता में बाधा कौन सी हो सकती है?10

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि निराला सवर्ण होते हुए भी दलितों के सर्वांगीण विकास के प्रबल समर्थक थे। वे मानव के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक और शैक्षिक उन्नति के माध्यम से विकास के प्रबल समर्थक थे। दलितों के प्रति केवल सहानुभूति दिखाना एक बात है और उनकी उन्नति के लिए सोचना और काम करना दूसरी बात है । निराला ने न केवल दलितवर्ग की विविध समस्याओं पर मानवतावादी दृष्टिकोण से विचार किया बल्कि समाधान भी प्रस्तुत किया है। समाज में जब तक असमानता रहेंगी तब तक निराला साहित्य की प्रासंगिकता बनी रहेगी।

**सन्दर्भ:**

1. प्रतिमा, पी. (1940). वर्तमान हिन्दू समाज. भारतीय भण्डार, प्रयाग, पृ.179

2. शाह, आर. (2010). निराला संचयिता. वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.-146

3. निराला, (1943). अणिमा. युग मंदिर प्रकाशन, उन्नाव, पृ.-25

4. नवल, एन. (1992). निराला रचनावली भाग-4. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.-254

5. शर्मा, आर. (2016). रागविराग. लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.-91

6. नवल, एन. (1992). निराला रचनावली भाग-2. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.-162

7.पाण्डेय, बी. (1997). उपानह साहित्य यानि निराला की दलित चेतना. हंस मासिक.

8. नवल, एन. (1992). निराला रचनावली खण्ड-6. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.-404

9. नवल, एन. (1992). निराला रचनावली खण्ड-6. राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ.-402

10.शर्मा, एस. सी. (1989). निराला साहित्य में सामाजिक चेतना. सत्येन्द्र प्रकाशन, इलाहाबाद, पृ.126-127